ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2021; 7(1): 459-463
www.allresearchjournal.com
Received: 02-11-2020
Accepted: 09-12-2020

डॉ. उमाशंकर त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत
विभागाध्यक्ष, राजकीय
स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
चरखारी, महोबा,
उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ॰ उमाशंकर त्रिपाठी
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत
विभागाध्यक्ष, राजकीय
स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
चरखारी, महोबा,
उत्तर प्रदेश, भारत

भारतीय संस्कृति में विवाह संस्कार: एक विवेचन

डॉ. उमाशंकर त्रिपाठी

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति की परिभाषाएं तथा व्याख्याएं तो बहुत की गई हैं मगर सरल सटीक और अपने साधारण शब्दों में कहूँ तो "भारतीय जनमानस में रचे बसे जो संस्कार, सामाजिक, धार्मिक, व पारिवारिक रीति रिवाज,परम्पराएं, मान्यताएं व राष्ट्रीय नैतिकमूल्यों के साथ-साथ भारतीय वेद शास्त्र आदि के सर्वमान्य सिद्धांत व नियम पालन की प्रतिबद्धता ही भारतीय संस्कृति का सहज व प्रत्यक्ष रूप धारण करती है" ।यह संस्कृति ही किसी भी देश का जीवन्त स्वरूप होती है, अपनी संस्कृति के बल पर ही कोई देश युगों- युगों तक यूँ कहें कि कल्पान्त तक जीवित रहता है । यहाँ यह कहना उचित होगा कि-

"यूनान मिस्र रोमा सब मिट गए जहां से,
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी" । ।[1]

यह हमारी हस्ती भारतीय संस्कृति ही है जिसमें पद पद पर आप संस्कार पाते हैं । अनादि काल से या यूँ कहें सृष्टि के आदि काल से ही स्थापित होकर चलने वाली यह सनातन है भारतीय संस्कृति, जिसमें " मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव [2]," । "सर्वे भवन्तु सुखिनः [3]" तथा " वसुधैव कुटुम्बकम्',[4]" इत्यादि भाव स्थिर हैं । इसमें विवाह एक संस्कार है न कि मात्र दो जनों स्त्री और पुरुष का कामना वशात् कुछ समय का स्वार्थिक या क्षणिक बंधन है - जैसा कि पाश्चात्य संस्कृति या देशों में सुना देखा जाता है कि अकस्मात् स्वेच्छा से विचरण करते समय कभी भी किसी स्त्री पुरुष का पारस्परिक संबंध तत्कालीन कामनावश होता है और एक दो संतान होने के पश्चात् दोनों पुनः अलग-अलग होकर किसी और के साथ संबंध स्थापित करते हैं । इस अनिश्चित जीवन का श्रेय मार्ग से क्या लेना देना है, विचार करें कि इस प्रकार जन्म पाने वाली संतति किस दौर से गुजरेगी,अपने हृदय में कौन से संस्कार धारण करेगी ? अर्थात् इन बातों और संस्कारों की उन पाश्चात्य देशों में कोई चिन्ता नहीं होती है और न ही वहाँ माता-पिता अपने बच्चों को मानवीय मूल्य व अच्छे संस्कार देने का अपना नैतिक दायित्व ही मानते हैं किन्तु इन सब बातों का मंथन जिस देश में होता है वह प्रमुख देश भारत है, अतः भारतीय संस्कृति में विवाह को परम पवित्र माना गया है,

जो एक पवित्र उद्देश्य के लिए सामाजिक कल्याण के लिए दो व्यक्तियों स्त्री और पुरुष का आत्मिक संबंध होता है, दोनों विवाह के पश्चात् एकात्म तत्व का अनुभव करते हैं अतः पति पत्नी अर्धांग और अर्धांगिनी कहलाते हैं, एक दूसरे के बिना दोनों अधूरे हैं दोनों एक साथ हैं तो पूर्णता का अनुभव करते हैं, और तभी जगत् के माता-पिता माँ पार्वती और भगवान् शिव का कल्याणकारी मंगलमय आशीष प्राप्त करते हैं । अन्यथा की स्थिति मेमें आज भारत में भी ऐसे संस्कार विहीन राक्षसी प्रवृत्ति के दुष्ट लोगों का प्रवेश और प्रसार हो गया है । जैसे कि "अलीगढ़ में ढाई साल की बच्ची की हत्या कर दी जाती है" । ऐसी दुष्टता क्रूरता भारत के लिए कलंक है ।सरकार द्वारा ऐसे दुष्ट लोगों के लिए अवश्य कठोर दंड का प्रावधान किया गया है । यह लोग भारतीय संस्कृति से संबध रखने वाले नहीं हैं, अतः भारत में रहने वाले प्रत्येक नागरिक की भलाई के लिए समान नागरिक संहिता लागू होनी चाहिये । आज भारत में भी भयावह समस्या हो रही है, क्योंकि विवाह के पश्चात् कलह, दहेज प्रथा के कारण उत्पीड़न, मनमानी तलाक स्वेच्छाचारिता, अनेक विवाह, अनेक संतान, अनेक विच्छेद और अनाचार, सामाज और राष्ट्र को किधर ले जा रहे हैं ?, कोर्ट भी नियंत्रण के लिए सक्षम तभी हो सकेगा जब सम्पूर्ण भारत में सभी के लिए न्याय समान कानून अर्थात् 'समान भारतीय नागरिक संहिता ' लागू होगी । भारत में विवाह स्वेच्छाचरिता नहीं अपितु सभी के लिए एक संस्कार है एक अच्छे सामाज का निर्माण करने के लिये समान नियम, कानून सबको स्वतः स्वीकार करना चाहिए इसमें कोई व्यक्तिगत धर्म संप्रदाय आड़े नहीं आना चाहिए । राष्ट्रीय जनसंख्या नियंत्रण कानून पूर्ण रूपेण प्रभावी क्यों नहीं हो रहा, जब तक अनेक या बहुविवाह को पूर्ण रूपेण रोक कर विवाह को एक पवित्र संस्कार के रूप में सभी लोग पूर्ण रूपेण नहीं मान लेते,तब तक जनसंख्या विस्फोट रुकना तथा असन्तुलित लिंगानुपात का सन्तुलित होना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन भी है ।

वस्तुतः "भारतीय संस्कृति में विवाह" वर्तमान् में प्रचलित सोलह संस्कारों में से एक तेरहवां संस्कार है । अतीव पवित्र एवं महत्वपूर्ण यह विवाह संस्कार पाणिग्रहण संस्कार भी कहा जाता है । जिसके द्वारा परिवार और समाज के लिए विशिष्ट उत्तरदायित्व प्राप्त होता है उसे सफलता पूर्वक वहन करना तथा अपने दायित्व को निभाने की नैतिक जिम्मेदारी समझना ही विवाह संस्कार के पवित्र बंधन में बाँधना है । व्यक्ति विवाह के द्वारा ही ब्रह्मचर्य आश्रम से गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश करता है, यहीं से समाज का पालन व भरण पोषण की जिम्मेदारी प्रारंभ हो जाती है । विवाह संस्कार इसलिए है कि इसका एक विशिष्ट उद्देश्य वही है जो मनुष्य का संसार में जन्म लेने का सार्थक उद्देश्य है 'चतुर्विध पुरुषार्थ' [5], धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ' की प्राप्ति है ।

अर्थात् धर्म का आचरण करते हुए अर्थ= धन का अर्जन करना और उसी धर्म पूर्वक कमाए हुए धन से कामनाओं की पूर्ति करके मोक्ष को प्राप्त करना ही शास्त्रों में चतुर्विध पुरुषार्थ की प्राप्ति कहलाती है । अतः भारतीय संस्कृति में, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास ये क्रमशः चार आश्रम माने गए हैं जिनमें गृहस्थ आश्रम को सबसे बड़ा ज्येष्ठ आश्रम माना गया है । किंतु गृहस्थ के लिए नित्य कर्म की विधि भी बताई गई है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य के जन्म लेने के पश्चात तीन ऋणहो जाते हैं देव ऋण पित्र ऋण और मनुष्य ऋण इन तीनों ऋणों के बारे में तैत्तिरीय संहिता में बताया गया है ।

"जायमानो वै ब्राह्मण स्त्रिभिऋणवान् जायते [6]" । (तै°सं°६|३|१०|५) के अनुसार मनुष्य जन्म लेते ही तीन ऋणों वाला हो जाता है उससे अनृण होने के लिए शास्त्रों ने नित्य कर्म का विधान किया है और वह नित्य कर्म गृहस्थ के द्वारा जब किया जाता है तो मनुष्य उन तीन ऋणों से मुक्त हो जाता है ।

"अथोच्यते गृहस्थस्य नित्यकर्म यथाविधि ।
यत्कृत्वानृण्यमाप्नोति दैवात् पैत्र्याच्च मानुषात् । ।[7]
(आश्वलायन)

शास्त्रविधि के अनुसार गृहस्थ के नित्यकर्म का निरूपण किया जाता है,जिसे करके मनुष्य देव-संबंधि ऋणों से मुक्त हो जाता है ।

अन्य तीनों इस पर आश्रित होते हैं, अत एव इसकी प्रसंशा में कहा गया है कि "धन्यो गृहस्थाश्रमः" [8] । इसी कारण ब्रह्मचर्य आश्रम (गुरुकुल) में विद्याध्ययन के पश्चात् सीधे सन्यास ग्रहण कर सन्यास आश्रम में जाना बहुत अच्छा नहीं माना बल्कि क्रमशः ब्रह्मचर्य से गृहस्थ तदनंतर वानप्रस्थ तत्पश्चात् ही सन्यास लेना चाहिए ऐसा धर्मशास्त्र में कहा गया है । देखें - "आश्रमादाश्रमं गच्छेदेष धर्मः सनातनः" [9] अर्थात् एक आश्रम से दूसरे आश्रम में क्रमशः जाना यही सनातन सदा से चला आ रहा भारतीय समाज का धर्म है । अतः कन्या का पिता अपने कुलाचार वर्ण धर्मानुसार समस्त बंधु बान्धवों संबंधियों की सहमति से सर्वथा योग्य कन्यानुरूप वर को खोजकर विवाह करने का विधान है, भारतीय युवक - युवतियों को भी इन सब बातों को समझते हुए अपने माता-पिता के सहमति से ही विवाह संस्कार करना चाहिए जिसमें समस्त संबंधियों बड़े बुजुर्गों का आशीर्वाद प्राप्त करते हुए तथा समस्त आवश्यक विधियों परम्पराओं तथा दैवीय शुभाशीष प्राप्त करते हुए इस विशिष्ट जिम्मेदारी निभाने की प्रतिज्ञा लेनी चाहिए और पग पग पर ईश्वर से अपनी कर्तव्य सफलता

के लिए प्रार्थना करना चाहिए कि मैं आत्म विश्वास पूर्वक इस महती नैतिक जिम्मेदारी को निभाऊंगा/ निभाऊंगी परमेश्वर मुझे या हमें शक्ति प्रदान करें । विवाह में सर्वप्रथम वरवरण (तिलक), मातृकापूजन व वरयात्रा के पश्चात् कन्या के द्वार पर सभी बारातियों के सहित वर का स्वागत सत्कार व द्वारपूजन का कार्यक्रम बड़े हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न होता है । तत्पश्चात् वर पक्ष की तरफ से वर के पिता आदि कन्या गृह मण्डप पर पहुंच कर कन्या द्वारा गौरी गणेश कलश पजन सम्पन्नता के समय ही कन्या के लिए वस्त्राभूषण सिन्दूर आदि सौभाग्य की वस्तुएं शुभाशीष के साथ प्रदान करते हैं जिसे लोकभाषा में चढाव कहा जाता है । तदनन्तर शुभ लग्न समयानुसार उसी मंडप में वर और कन्या का पाणिग्रहण/विवाह संस्कार सम्पन्न होता है । पाणिग्रहण संस्कार का अभिप्राय यह है कि कन्या के माता-पिता दोनों मिलकर सभी बंधु बांधवो के समक्ष इस बड़ी नैतिक जिम्मेदारी को समझते हुए वर के हांथ में कन्या का हांथ सौंपते हैं ; जिसमें अग्नि, सूर्य, ध्रुव तारा, सभी देवताओं व स्वज्ञातिबान्धवों को साक्षी मानकर एक सभ्य समाज के निर्माण का संकल्प लिए हुए वर कन्या का हांथ ग्रहण करता है या यूं कहें कि सभी पारिवारिक व रिश्तेदारों के शुभाशीष प्राप्त करते हुए वर और कन्या एक दूसरे को हृदयं से स्वीकार करते हैं । यह विवाह संस्कार एक ऐसी सुन्दर संतान उत्पन्न करने के लिये है जो कि दोनों कुलों के पूर्वजों का उद्धार करने के साथ ही अपने सुंदर धर्माचरणयुक्त कार्यों से अपने कुल खानदान व देश का मान बढाए । यह तभी संभव है जब माता पिता संतान को संस्कार प्रदान करेंगे । यह एक यज्ञ भी है, जिसमें सात (फेरे) प्रदक्षिणा करते समय धान के खिले हुए लावा का हवन किया जाता है जो लाजाहोम के नाम से जाना जाता है जिसमें हवन करते समय देवताओं से यह प्रार्थना करते हैं कि इन खिले हुए लाजों की तरह हम अपने सुंदर कार्यो से समाज में हमेशा खिले रहें प्रसन्न रहें और दूसरों को भी प्रशन्न रखें ।

"इयंनार्युपब्रूते लाजानावपन्तिका" ।

विवाह में सप्तपदी तथा कन्या के सात वचन व वर के भी चार वचन तथा सिंदूर वंदन व हृदयालंभन तथा प्रारंभ मे दूर्वा के माध्यम से हल्दी चंदन व तेल चढ़ाना जैसी विधियाँ मान्यताएं व परम्पराएं बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं जिसका अर्थ किसी भी परिस्थिति में दूर्वा की तरह हरी भरी प्रसन्नता व समृद्धि समृद्धि से है; हल्दी चंदन तेल व फूल का प्रयोग भी समझाता है कि अपने गुण, स्वभाव,कार्य व व्यवहार की शीतलता, चमक व महक सदा समाज मे बनाएं रखें ।

साथ ही सप्तपदी में वर कन्या से कहता है कि "सखे सप्तपदा भव" अर्थात् हे मित्र! सात पद मेरे साथ चलो' प्रत्येक पैर रखने पर कुछ वचन व एक दूसरे की सहमति तथा जीवन भर साथ चलने के विश्वास का आग्रह है ।

समानी व आकूतिः समाना हुदयानी वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति । ।
(ऋग्वेद 10/191)

इसका अर्थ है – हमारी अभिव्यक्ति एक जैसी, हमारी सोच एक जैसी, हमारे अन्तःकरण एक जैसे रहें (जिसके कारण हम सदा साथ साथ रहें) ।

ऋग्वेद के दशम मण्डल में ही इसी के अगले मन्त्र मे पुनः साथ चलने और साथ बोलने की बात कही गयी है-

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते । ।

अर्थात् – हम सब एक साथ चलें, आपस में संवाद करें, हम एक दूसरे के मन को जानें । जिस प्रकार देवता तथा पहले के ऋषि महर्षि विद्वान् अपने नियत कार्य के लिए एक होते थे, उसी प्रकार हम भी साथ में मिलते रहें ।

दूसरा एक और मंत्र देखिये जिसमें वैदिक ऋषि पुनः एक सन्देश देते है-

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि । ।
(ऋग्वेद अध्याय 8/49/3)

अर्थ – इन (मिलकर कार्य करने वालों) का मन्त्र समान होता है अर्थातू ये परस्पर मंत्रणा करके एक निर्णय पर पहुँचते हैं, चित्त सहित इनका मन समान होता है । मैं तुम्हें मिलकर समान निष्कर्ष पर पहुँचने की प्रेरणा (परामर्श) देता हूँ, तुम्हें समान भोज्य प्रदान करता हूँ ।

हृदयालम्भन की क्रिया में वर और कन्या एक दूसरे के हृदय पर हाँथ रख कर अपना चित्त और हृदय एक करने का सङ्कल्प लेते हैं ।

"तव चित्तं मम चित्तमस्तु - मम चित्तं तव चित्तमस्तु" ममव्रतं ते हृदयं दधामि" । अर्थात् तुम्हारा चित्त मेरा चित्त हो और मेरा चित्त तुम्हारा चित्त हो, मेरा यह संकल्प है कि मैं तुम्हारे हृदय को धारण करूंगा । अर्थात् तुम्हारे हृदय को दुःखी नहीं करूंगा, सदा प्रसन्न रखूँगा ।

अश्मारोहण या शिलारोहण से यह कहती है कन्या कि पारिस्थिति आने पर मैं तुम्हारे साथ पर्वत पर भी चढ़ जाऊँगी अर्थात हर परिस्थिति में साथ निभाऊँगी । किंतु वामांग में आने के लिए कन्या के साथ वचन बहुत मार्मिक हैं जो समाज को पुरूषों को याद रखना चाहिए ।

जो नारी सम्मान का अप्रतिम उदाहरण भारतीय संस्कृति के वैवाहिक संस्कार में देखने को मिलता है ।

कन्या का पहला वचन: "तीर्थ, व्रत, उद्यापन, यज्ञ, और दान आदि शुभ कर्म मेरे साथ करें, [9]

दूसरा वचन: देवताओं को हवनीय द्रव्य व पितरों को श्राद्ध पिण्डदान आदि अवश्य करोगे । [10]

तीसरा वचन: परिवार की रक्षा और भरण पोषण के साथ पशुपालन भी करोगे ।

चौथा वचन: घर में धन धान्य का संचय तथा आय व्यय का ध्यान रख कर मेरी सहमती से कार्य करेंगे ।

पांचवां वचन: देवालय, बाग, कुआं, तालाब, बागड़ी आदि बनवाना तथा जलश्रोतो का संरक्षण करोगे ।

छठा वचन: घर परिवार के पालन पोषण के लिए धन कमाने हेतु व्यापार अथवा अन्य नगर या विदेश ही क्यों न जाना पड़े ।

सातवां वचन: किसी भी परिस्थिति मे दूसरी स्त्री का सेवन जीवन में नहीं करोगे यदि ये सभी सातों वचन तुम्हें सहर्ष स्वीकार हैं तो मैं तुम्हारे वामांग में आने के लिए तैयार हूं ।

और सातों वचनों को वर जब स्वीकार कर लेता है तब कन्या से भी हर कार्य मे अपनी सहमति से संबंधित चार (16) वचन लेकर सदा के लिए दोनों पति पत्नी हो जाते हैं । विवाह संस्कार संपन्न होता है और जीवन में कभी भी साथ न छोड़ने का प्रण करते हुए जीवन यात्रा एक महान् उद्देश्य के लिए दो पवित्र आत्माओं का बंधन मिलन एकाकार होकर "संगच्छध्वं संवदध्वम्" के उद्घोष के साथ परिवार/समाज का पालन पोषण करते हुए पूर्णता और परमलक्ष्य को प्राप्त करते हैं ।

निष्कर्षत

संक्षेप में कहें तो भारतीय संस्कृति में विवाह एक ऐसा संस्कार है जो मानव जीवन को एक दूसरे के लिए जीना, साथ चलना, साथ खाना तथा साथ रहना सिखाता है ।अर्थात् सह अस्तित्व का सुखद एहसास, त्याग व समर्पण की भावना की सुन्दर प्रयोगशाला बनकर एक सुन्दर परिवार व समाज के निर्माण का वैज्ञानिक प्रबंधन करता है । साथ-साथ परमेश्वर की उपासना करते हुए अनन्त यात्रा का सहभागी बनाते हुए मानव जीवन में क्रियाशीलता व जिजीविषा का आधायक बनता है ।

जयतु अस्माकं भारतीया संस्कृतिः ।

सन्दर्भ

1. अल्लामा इकबाल के गीत "सारे जहाँ से अच्छा" की पंक्तियाँ ।
2. तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षावल्ली अनुवाक - 11
3. श्री सूक्त के मन्त्राभ्यास (वाजसनेयी संहिता) मे प्रकट होते हैं ।
4. महोपनिषद् के अध्याय 4 श्लोक 71,
5. महर्षि मनु पुरुषार्थ चतुष्टय के प्रतिपादक हैं ।
6. महर्षि वेदव्यास गृहस्थाश्रम की प्रशंसा करते हुए कहते हैं "गृहस्थ्येव हि धर्माणां सर्वेषां मूलमुच्यते" अर्थात् गृहस्थी को ही सभी धर्णों का मूल कहा जाता है ।
7. तै°सं°3.610.5
8. आश्वलायन गृ°सू°
9. (ऋग्वेद अध्याय 8/49/3)